LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-7), रविवार, 29 जून 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/78ivCAJSxhk

क्षणभङ्गुर जीवन का रहस्य

श्री गीता माँ, श्री मधुराष्टक तथा श्री हनुमान चालीसा के सुस्वर पठन के साथ ही नवम अध्याय के प्रथम भाग के अर्थ विवेचन सत्र का प्रारम्भ हुआ।

प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में गुरु की वन्दना करना अत्यन्त शुभ फलदायक होता है। जिस प्रकार एक नन्हा बालक शिशु रूप में जन्म लेकर धीरे-धीरे चलना-फिरना सीख जाता है फिर चलते-चलते कभी अपने पिता की थाली के समक्ष आ कर बैठ जाता है और उनकी थाली से एक ग्रास निकालकर उसी में अपने पिता को भी खिलाता है। थाली भी उनकी, अन्न भी उनका किन्तु शिशु द्वारा ग्रास दिये जाने से पिता को कितनी प्रसन्नता होती है। उनके लिये यह अमृत समान होता है। इसी प्रकार, गुरु द्वारा दी गयी शिक्षा को हम आगे बढ़ा रहे हैं। यह सद्गुरू की कृपा है।

नन्हा शिशु जब चलने का प्रयास करता है, उसकी माँ उसका उत्साहवर्धन करती है। इसी प्रकार हमारे द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता पर कुछ कहने पर स्वामी जी प्रसन्न हो जायें इससे अधिक कृपा और क्या हो सकती है।

एक बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि खद्योत (जुगनु) कितना ही स्वयं प्रकाशित क्यों न हो, बड़ा क्यों न हो जाये, सूर्य के समक्ष उसका तेज मन्द ही होता है। इसी प्रकार स्वामी जी की अनुपस्थिति में तो हम थोड़ा बहुत बोलने का प्रयास कर सकते हैं किन्तु उपस्थिति सदैव अनुभव होती रहती है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्वदेव महेश्वराः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः ।।

नौवें अध्याय का नाम तथा स्थान, दोनों ही अद्भुत हैं। महाभारत के अठारह अध्यायों के मध्य में श्रीमद्भगवद्गीता स्थित है तथा श्रीमद्भगवद्गीता के बीच में यह नौंवा अध्याय- **राजविद्याराजगुह्ययोग** स्थित है। यह मध्य तथा शिखर का अध्याय है। कुछ अनुभवों को शब्दों में बाँधना कठिन होता है।

कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने कभी शक्कर का स्वाद न लिया हो। हम उसे शब्दों में शक्कर का स्वाद समझाने का प्रयास करें तो वह व्यक्ति शक्कर के बाह्य अस्तित्त्व को तो जान लेगा किन्तु स्वाद का अनुभव नहीं कर पायेगा। इसी प्रकार कुछ बातें ऐसी

होती हैं जिनका अनुभव आये बिना उन्हें अनुभूत करना कठिन होता है। जब वक्ता स्वयं श्रीभगवान् हो तथा श्रोता अर्जुन तो फिर असम्भव क्या है ?

अनायास जब ये बातें स्वयं श्रीभगवान् ने शब्दबद्ध कर दीं अन्यथा कठिन थी इसीलिये इसे गुह्य शास्त्र कहा जाता है- **राजविद्याराजगुह्ययोग।**

इसे राजगुह्य क्यों कहा गया ?

जब प्रथम बार गुड़ से शक्कर बनायी गयी, तब शक्कर बेचना भी कठिन कार्य था। यह बात लगभग सत्तर अस्सी वर्ष पहले की है। उस समय में हाथ गाड़ी पर रखकर शक्कर विक्रय का कार्य होता था। जिन्होंने इसके पूर्व शक्कर के स्वाद को नहीं जाना था, वे इसके महत्त्व को कैसे समझेंगे? इसीलिये विक्रेता थोड़ी सी शक्कर आस्वादन करने हेतु उन लोगों को बिना मूल्य देते थे।

अनुभव से ही ज्ञान को प्राप्त किया जा सकता है। इसे राजगुह्य क्यों कहा गया क्योंकि जो बात श्रीभगवान् ने इस अध्याय में बतायी है उसका अनुभव अधिकांश लोगों को नहीं है।

हम सब अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि इस अध्याय को समझने की उत्सुकता हमारे मन में जगी है। हम सब "**लर्नगीता**" के द्वारा गीता परिवार से जुड़ गये व ज्ञान की अनुभूति करने लगे।

वेद तथा पुराण सङ्ख्या में अधिक हैं। अतः यदि हम इनका अध्ययन करने जायेंगे तो हमारा जीवन कम पड़ जायेगा। संस्कृत भाषा का अभ्यास न होने के कारण उसे पढ़ना तथा उनका अर्थ समझना दोनों ही कठिन है। यदि भाषा का ज्ञान प्राप्त कर भी लिया तो उसका अध्ययन भी होना चाहिये। इसके लिये सात-आठ वर्ष की आयु से गुरुगृह में जाकर वेदाध्ययन करना पड़ेगा। आयु के चालीस-पचासवें वर्ष में यह अध्ययन कठिन है। अब उसका अध्ययन करना असम्भव ही है। ऐसे में श्रीमद्भगवद्गीता हमें प्राप्त हुई और ये अध्याय **राजविद्याराजगुह्ययोग** हमें समझ में आने लगा।

उदाहरणार्थ हम मार्ग से जा रहे हैं, हमें तीव्र भूख लग गयी। हमें लगा कि कुछ खाने को मिल जाये। शीघ्र ही आम से लदे वृक्ष दिखायी दे जायें, किन्तु पेड़ ऊँचे हैं। आम भी ऊँचाई पर लगते हों तथा हमें वृक्ष पर चढ़ना भी नहीं आता हो तो हम आम कैसे खायेंगे? इसके साथ ही कोई व्यक्ति आमरस का पात्र लेकर समक्ष आ जाये तो जो आनन्द प्राप्त होगा, वैसा ही आनन्द इस अध्याय का अर्थ जानते समय आता है।

हमारे मन में **वेदों-उपनिषदों** को जानने की जिज्ञासा भी है। जब ये हमारे समक्ष आयेंगे तो जो अनुभव होगा, इसी प्रकार श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन को दिया हुआ यह गुह्यतम ज्ञान हमें अनायास ही प्राप्त हो गया। इसके लिए अर्जुन को धन्यवाद ।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दन,
पार्थी सुधिभोक्ता तो दुग्धम् गीतामृतम् मध्ता।।

सभी उपनिषदों को गायें बनाया गया और गौ पालक श्री कृष्ण बने। वत्स है अर्जुन, जो सुधारस का पान कर रहे हैं। उनके कारण इस परमानन्द के अधिकारी हम सभी बने हैं।

श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष जीवन में जो भाव हमने देखा, वही भाव श्रीमद्भगवद्गीता में हमें सुनने को मिलता है।

श्रीभगवान् गोवर्धन पर्वत की पूजा करते हैं, यमुना नदी को स्नेह देते हैं। पर्वतों-नदियों में हम भगवद्तत्त्व का अनुभव करें तो यह भाव हमें श्रीभगवान् के जीवन में स्वयं दिखता है। चराचर सृष्टि में भगवद्तत्त्व व्याप्त है। श्रीभगवान् गायों की पूजा करते हैं, उन्हें चराने ले जाते हैं, उनसे स्नेह करते हैं। अश्वों की चिन्ता करते हैं।

महाभारत के युद्ध विराम होने के पश्चात् सन्ध्याकाल में श्रीकृष्ण अपने रथ के अश्वों को जल पिलाने ले जाते हैं, चारा खिलाते हैं,

उन्हें स्वच्छ करते हैं, उनकी सेवा करते हैं। चराचर सृष्टि का पूजन करते हैं, आदर करते हैं तथा सभी गोप-गोपियों तथा जनसमुदाय को यह भान कराते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि में भगवद्तत्त्व व्याप्त है। भगवद् नाम के हम सब अधिकारी हैं।

स्त्रियो वैश्यास तथा शूद्रास

परमगति को प्राप्त करने का अधिकार स्त्री, वैश्य तथा शूद्र सभी को है। स्त्रियों का उल्लेख विशेष रूप से है क्योंकि लिंग-भेद अथवा जाति भेद का यहाँ कोई स्थान नहीं है। यह मात्र कहने की बात नहीं है। ऐसे कई उदाहरण हमारे इतिहास में दिखायी देते हैं।

कौशिक नामक एक ब्राह्मण तपस्या कर रहे होते हैं। वे जिस वृक्ष के नीचे तपस्या कर रहे थे उस वृक्ष पर एक पक्षी आकर बैठ जाता है और उसने ब्राह्मण देवता पर मल उत्सर्जित कर दिया। यह देखकर वह ब्राह्मण क्रुद्ध हो जाते हैं। उन्होंने क्रोध से पक्षी को देखा तो पक्षी एक क्षण में भस्मसात हो गया। ब्राह्मण को यह ज्ञात हो गया कि उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी है तथा वह पक्षी उनकी तपस्या से प्राप्त उसी सिद्धि के कारण भस्म हो गया है। उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनकी तपस्या की सिद्धि उन्हें प्राप्त हो गयी।

वे भोजन हेतु भिक्षा माँगने के लिये निकले। एक द्वार के समक्ष जाकर उन्होंने आवाज लगायी तो भीतर से किसी ने उन्हें प्रतीक्षा करने हेतु विनती की। वे प्रतीक्षा करते रहे किन्तु कोई नहीं आया। उन्होंने पुनः पुकारा तो पुनः प्रतीक्षा करने का अनुरोध सुनायी दिया। अब तो ब्राह्मण देवता क्रोधित हो गये। भूख से व्याकुल उन्होंने उच्च स्वर में '**भवति भिक्षांदेहि**' का स्वर लगाया। इसके साथ ही एक महिला थाली में आटा लेकर आयी तथा उनसे क्षमा माँगते हुये बोली कि मैं तो आ ही रही थी किन्तु आप क्रोधित हो गये। क्रोध मनुष्य का शत्रु होता है । क्रोध से सारी साधना समाप्त हो जाती है। मैं क्या वह पक्षी हूँ जो आपके नेत्रों से भस्म हो जायेगा। क्षमा करें, मैं राख नहीं हो सकती।

यह सुनकर कौशिक ऋषि को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा कि आपको कैसे पता चला कि मैंने पक्षी को भस्म कर दिया है? वह स्त्री बोली, "क्षमा करें ऋषिवर, मैं अपने पति की सेवा में कार्यरत हूँ। मेरे पति जर्जर अवस्था में अपनी अन्तिम साँसें गिन रहे हैं। उनकी सेवा करना मेरा परम तथा प्रथम धर्म है। उन्हें तीव्र ज्वर है अतः अभी नहीं, पुनः कभी बताऊँगी। आप सामने बैठे तुलाधारी वैश्य से पूछिये, वह आप को बतायेगा कि मुझे यह बात कैसे पता चली। अब कौशिक ऋषि यह जानने को उत्सुक हो गये कि वह वैश्य भी जानता है कि मैंने पक्षी को भस्म किया है। वे उसकी दुकान के समक्ष जाकर खड़े हो गये तथा अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। ग्राहक एक-एक करके आते ही जा रहे थे तथा कौशिक ऋषि अवस्थ हो रहे थे।

तुलाधारी वैश्य ने क्षमा माँगते हुये कहा कि ग्राहक की सेवा देने के बाद आपसे बात करता हूँ। ग्राहकों का आना बन्द ही नहीं हो रहा था। अब ऋषि की अस्वस्थता तथा क्रोध देखकर उस वैश्य ने उनसे कहा कि ग्राहकों की सेवा करना मेरा प्रथम धर्म है किन्तु यदि आपको यह जानने की उत्सुकता है कि उस महिला को कैसे पता चला कि आपने पक्षी को भस्म किया है तो आप सामने वाले कसाई के पास जायें। वह बता सकेगा। अब ऋषि ने सोचा कि मुझे कसाई के पास जाना पड़ेगा किन्तु अन्य विकल्प न होने के कारण वे उसके समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हो गये। अब वह बोला कि आप जानना चाहते हैं उन दोनों को कैसे पता चला कि आप ने पक्षी को भस्म किया है?

यह उन्होंने अपनी साधना से प्राप्त किया है। वह स्त्री पतिव्रता है वह अपने स्त्रीधर्म को निष्ठापूर्वक निभा रही है। वैश्य भी अपना धर्म जानता है तथा ग्राहकों को देवता स्वरूप मानता है। जो अपने-अपने धर्म का निर्वाह करते हैं वे अपने पीछे घटी घटनाओं को भी जान लेते हैं।

ऋषिवर बोले, "उनका तो समझ में आता है किन्तु आप तो कसाई हैं। आप तो प्रातःकाल से ही जीवों को काटते हैं। आप कौन-सी साधना-तपस्या करते हैं जिससे कि आपको भी पता चला गया?"
कसाई बोला, "मैं कोई तपश्चर्या, होम-हवन नहीं करता हूँ। नामजप नहीं करता हूँ, मैं बस सुबह उठकर श्रीभगवान् को प्रणाम करता हूँ तथा आने से पहले अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा करता हूँ। दुकान पर आने वाले किसी भी ग्राहक से धोखा नहीं करता हूँ। बस यही नियम पालन मैंने अपने जीवन में किया तथा भगवद् कृपा मुझ पर भी हो गयी।

एक स्त्री, एक वैश्य, एक शूद्र सब पराङ्गति के अधिकारी हैं।

ये सब भी यदि गुह्यतम ज्ञान को जानेंगे तो उन सबका भी कल्याण होगा इसके साथ ही श्रीभगवान् ने कहना प्रारम्भ किया।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् अर्जुन को
अनुसूय अर्थात् दोष दृष्टि रहित कहते हैं क्योंकि अर्जुन किसी भी वस्तु में दोष नहीं देखते हैं। इसी कारण से श्रीभगवान् यह गुह्यतम ज्ञान आज अर्जुन को दे रहे हैं। यह ज्ञान, विज्ञान के साथ है।

जिस प्रकार राजहंस दूध और जल के मिश्रण से मात्र दूध को पीकर जल को पृथक कर देता है, उसी प्रकार ज्ञान तथा विज्ञान दोनों को पृथक करके मैं तुझे सुनाऊँगा। इस ज्ञान को प्राप्त करके तू मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा। गुह्यतम इसलिये कि जो जानना चाहेगा, वही इस ज्ञान को ले पायेगा।

इस नवम् अध्याय में आपकी दृष्टि पूर्णतया स्वच्छ हो जायेगी, दोष रहित हो जायेगी तथा मोक्ष का मार्ग प्राप्त करने की विधि भी मिल जायेगी।

आठवें अध्याय के बाद, अब इस अध्याय को सरल करके श्रीभगवान् यह ज्ञान अर्जुन को देते हैं।

श्रीभगवान् ने जो अमृत परोसा है उसकी क्षुधा होने पर ही प्राप्त होने का उसका महत्त्व है अन्यथा उसके रस का आनन्द नहीं आता।

जिस प्रकार आम्रवृक्ष को देखकर क्षुधा में वृद्धि होती जाती है उसी प्रकार अर्जुन की भी गुह्यतम ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा भी तीव्र हो रही है।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- राजविद्या तथा राजगुह्य परम पवित्र ज्ञान है।
हमलोग सुवर्ण को शुद्धतम समझते हैं। वास्तविकता में सुवर्ण अत्यन्त पवित्र धातु है यदि इसमें अशुद्धि न हो। अशौच कर्म करने के पश्चात् भी सुवर्ण को धोने की आवश्यकता नहीं रहती है। यदि हम किसी की अन्तिम विधि में जाते हैं तो हमें अपने वस्त्र धोने पड़ते हैं किन्तु सुवर्ण आभूषणों को इसकी आवश्यकता नहीं है। जब हम स्नान करते हैं तो वे भी धुल जाते हैं।

सुवर्ण से भी पवित्र तथा शुद्ध यह ज्ञान है इसलिये श्रीमद्भगवद्गीता अशौच में भी बोली जा सकती है।

यदि घर में किसी का निधन हो गया हो तो भी सूतककाल में भी इसका वाचन हो सकता है। स्नान न करने पर भी यदि श्रीगीताजी के श्लोकों का उच्चारण किया जाये तो बाधा नहीं होगी क्योंकि श्रीगीताजी स्वयं पवित्रतम् है।

इसमें भी नवम् अध्याय तो राजविद्या अर्थात् समस्त विद्याओं का राजा है। हम यज्ञ, नामजप, दान कुछ भी करें किन्तु राजविद्या ईश्वर को प्राप्त करने का अत्यन्त सुलभ मार्ग है तथा विज्ञान सहित है।

श्रीभगवान् यह रहस्य खोलना चाहते हैं क्योंकि अर्जुन उनके भक्त भी हैं तथा सखा भी। मात्र भक्त अथवा मात्र सखा को यह ज्ञान नहीं मिल सकता।

भक्तो सी में सखा चेति रहस्यम् हेतत्तुमम् ।।

यदि मात्र सखा को मिलना होता तो सुदामा जी को मिल जाता अथवा गोपियों को मिल जाता, वे सारी भक्त थीं किन्तु न गोपियों को मिला न सुदामा जी को। यह ज्ञान अर्जुन को मिल रहा है।

यहाँ भक्ति तथा स्नेह दोनों हैं। अर्जुन को श्री कृष्ण पर पूर्ण विश्वास है। यदि मुझसे कोई त्रुटि हो जाये तो भी श्रीकृष्ण मुझे उँगली पकड़कर यहाँ से बाहर निकाल लेंगे। ऐसा अर्जुन का विचार है। मन में यह भाव है तभी श्रीभगवान् यही ज्ञान उन्हें बताते हैं जो अत्यन्त गुह्यतम है, पवित्र है। सबसे उत्तम और प्रत्यक्ष फल देने वाला है, धर्मयुक्त है, साधना करने में अत्यन्त सरल और अविनाशी है। युगों-युगों से अपरिवर्तनीय है।
यहाँ ज्ञान तथा विज्ञान में अन्तर को समझना आवश्यक है।

ज्ञानम विज्ञान सहितम ।
ज्ञान में कोई परिवर्तन नहीं होता है, विज्ञान परिवर्तनशील है।

पूर्वकाल में पृथ्वी को सपाट समझा जाता था किन्तु विज्ञान की खोजों से ज्ञात हुआ कि पृथ्वी तो गोल है।
हम पृथ्वी को स्थिर तथा सूर्य को चलायमान समझते थे क्योंकि सूर्य उदय तथा अस्त होता हुआ दिखता था। विज्ञान ने बताया कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। इसी कारण ऋतुएँ बदलती हैं, दिन-रात हो रहे हैं। सूर्य तो अपने स्थान पर ही है तथा बाद में, यह भी ज्ञात हुआ कि सूर्य भी स्थिर नहीं है, वह भी एक महासूर्य की परिक्रमा कर रहा है। पृथ्वी की गति से कई गुणा तीव्र गति से भ्रमण कर रहा है।

बाहर से आने वाली वस्तुओं पर प्रयोग करके जो सिद्ध किया जाता है वह विज्ञान है। देखने, सुनने, स्पर्श करने से जो पता चलता है, वह विज्ञान है। प्रयोगशाला में जो सिद्ध किया जा सकता है वह विज्ञान है। जो पढ़ा जा सकता है, वह विज्ञान है।

ज्ञान वह होता है जो पढ़ा ही नहीं जा सकता। जो बाहर से आता ही नहीं उसे पढ़ेंगे कैसे? जब बाहर से कोई कुछ नहीं कह रहा है तो सुनेंगे कैसे ?

ज्ञान अन्तर्मन तथा अन्तर्रात्मा की अनुभूति होती है। अनुभव से जो समझ में आता है, वह ज्ञान है। जो बाहर से आये उसे विज्ञान कहते हैं। मूलभूत सिद्धान्त यह है कि विज्ञान परिवर्तनशील है।

एक समय में मात्र टेलीफोन होते थे फिर छोटे-छोटे मोबाइल, उसके पूर्व पेजर तथा फैक्स का प्रयोग होता था। मोबाइल में पहले साधारण तथा उसके पश्चात 2G, 3G, 4G व अब 5G आ गया है। पहले मात्र बात हो पाती थी किन्तु अब चित्र आदि भी देख व भेज सकते हैं।
हम भी विज्ञान की सहायता से ही बात कर पा रहे हैं।

विज्ञान निरन्तर परिवर्तनशील है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) की सहायता से हम कई प्रयोग करके अपनी जीवन के अमूल्याग्र परिवर्तन को देखेंगे।

ज्ञान, पाँच सहस्त्र वर्ष पूर्व जो था वही है। जो अनुभूति उस समय थी वही आज है इसीलिये इतने अन्तराल के बाद भी उतनी ही यथार्थ है। हमारे जीवन को ठीक करने हेतु पर्याप्त है।

एक बात है, जिसके मन में श्रद्धा होगी, वही इस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। श्रद्धा तथा अन्धश्रद्धा में एक बहुत ही पतली सी रेखा है। अन्धश्रद्धा से श्रद्धा की ओर तथा श्रद्धा, जो विज्ञान दृष्ट्या हो, वही मानना चाहिये।

क्या आपने कभी माता से सन्देह दृष्टि से पूछा कि मेरे पिताजी यही हैं क्या?
नहीं, क्योंकि मन में कभी शङ्का नहीं आयी है। हम श्रद्धासहित अपनी माता के कहने पर उन्हें ही पिता समझकर सम्मान देते है। यह श्रद्धा जब तक हमारे मन में नहीं होगी तब तक इसको प्राप्त करने का मार्ग नहीं खुलेगा।

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन- जिसमें श्रद्धा नहीं है, उसके पास मुझे प्राप्त करने का मार्ग ही नहीं है। उसके पास मुक्ति को प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं है।

मान लीजिये, किसी घर में झोपड़ी के नीचे द्रव्य है। उस घर में एक भिखारी रहता है और वह उस द्रव्य के बारे में नहीं जानता है तथा बाहर से ही भीख माँगता रहता है।
अनभिज्ञता वश वह यह भी नहीं जान पाता कि राजा से भी अधिक धन उसके समीप है।

कोई अमृतप्राशन कर रहा हो तथा क्षितिज पर उसे मृगजल दिखायी दे तो उस मृगजल के पीछे वह अमृत का वमन कर दे तो यह मूर्खता होगी।

ऐसे ही बिना श्रद्धा के ज्ञान को प्राप्त करना भी मूर्खता होगी। आपको श्रद्धा रखनी ही होगी। आपको इस बात को मानना पड़ेगा।

अभी महाराष्ट्र में वारकरी पण्ढरपुर की वारी के लिए निकले है। प्रत्येक घर से लोग निकलकर लाखों श्रद्धालुओं का जत्था बना रहे हैं।

उनका विश्वास तथा दृढ़ सङ्कल्प है कि सन्तों की सङ्गत से वे आषाढ़ एकादशी के दिन पहुँच जायेंगे तथा विठ्ठल के दर्शन करके अपने जीवन को धन्य करेंगे। पन्द्रह दिवस तक निरन्तर चलना पड़ता है। वर्षा हो रही है, नदियों में बाढ़ आयी हुयी है, सुबह उठते हैं तथा चल पड़ते है। खाने-पीने की चिन्ता करने की भी अवश्यकता नहीं है। पूरे मार्ग में लोग सेवायें देते हैं तथा भोजन इत्यादि भेंट करते हैं।

जब चलते-चलते पहुँच जाऊँगा तो भगवान् विठ्ठल के दर्शन करके मन प्रसन्न हो जायेगा। इसी श्रद्धा के साथ वे सालों-साल ये वारी करते हैं।

जो यम नियमों का पालन करते हैं। तुलसी माला धारण करते हैं। मांसाहार, मदिरापान, द्युतक्रीड़ा इत्यादि नहीं करते हैं। श्रीभगवत् नाम की माला नित्य करते हैं। इन लोगों को वारकरी कहते हैं।

कुछ स्त्रियाँ शीश पर मङ्गल कलश अथवा् तुलसी वृन्दावन भी धारण करती हैं। इनके मुख सन्तुष्ट होते हैं। ये हमें आश्चर्यचकित करते हैं। गीताजी का ज्ञान उन्हें समझ आ गया है।

प्रसाद सर्व दुःखानाम्
हानिरस उपजायते ।

ये जो प्रसाद है वो सारे दुःखों का विनाश करता है। यह प्रसाद कैसे लायें? ये भगवत् नाम का प्रसाद जब अन्दर गुँजायमान होने लगे, "**रामकृष्ण हरि**" का जाप निरन्तर मुख से निकलने लगे तथा हृदय में भी चलता रहे, इसी से व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। इसी का नाम प्रसाद है। हम लोग तो प्रसाद के नाम पर मात्र मुख ही मीठा करते हैं।

राजविद्याराजगुह्ययोग को समझना पड़ेगा तथा उस मार्ग पर चलना पड़ेगा। इसके बाद ही मुक्ति के मार्ग खुलेंगे।

आगे श्रीभगवान् कह रहे हैं।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं तुम्हें सामने जितनी भी मूर्तियाँ दिख रही हैं, पशु-पक्षी, वृक्ष, पर्वत, नदियाँ। ये सब मेरी ही उपज हैं। मेरे ही सङ्कल्प के कारण, मेरे आधार से ये स्थित हैं। मुझ निराकार परमात्मा से सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है परन्तु मैं वास्तव में उनमें लिप्त नहीं हूँ।

यहाँ श्रीभगवान् कहना चाहते हैं कि जैसे बीज में एक परिपूर्ण वृक्ष होता ही है किन्तु वह दिखाई नहीं देता है। उस बीज को समय के अनुसार मिट्टी तथा जल मिलने से वह अङ्कुरित हो जाता है तथा विशाल वृक्ष बन जाता है जिसमें लाखों बीज लग जाते हैं।

बीज में वह वृक्ष निहित था किन्तु वह दिखता नहीं था। वह दिखता तब है जब वह स्वयं को समर्पित कर देता है। स्वयं को तोड़-फोड़ कर अपने अस्तित्व को मिटाकर ही वृक्ष को पल्लवित कर पाता है।

यह बीज हमारे भीतर भी विद्यमान है किन्तु अहङ्कारवश उस बीज पर आवरण पड़ जाता है। यह आवरण जब तक टूटेगा नहीं, तब तक मैं व मेरा नहीं छूटेगा। बीज में वृक्ष का होना जितना सत्य है, उतना ही सत्य भूतसृष्टि में उस भगवत् तत्त्व का होना है।

अलङ्कार गढ़ने हेतु सुवर्ण पिघलाना पड़ेगा अन्यथा वे नहीं बन पायेंगे। पिघलाने के लिये सुवर्ण को उबालना पड़ता है। अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। जब सोना तपेगा तभी पिघलेगा। जीवन में जब तक तप नहीं आता तब तक ये पिघलना सम्भव नहीं है। तब तक भगवद् तत्त्व को जानना भी सम्भव नहीं है।

पिघलने का अर्थ क्या है?

पिघलने का अर्थ है अहङ्कार का गलना। यह घर मैंने बनाया, यह गाड़ी मैंने खरीदी, गहने मैं लाया, मैंने ही सब कुछ किया। यह विचार त्यागने के पश्चात ही अहङ्कार की समाप्ति होगी। समुद्र से पानी ऊपर उठता है उसे हम लहर कहते हैं किन्तु वह लहर समुद्र का ही एक हिस्सा है। जैसे ही वह गिरेगी, पुनः समुद्र बन जायेगी।

इसी प्रकार यह जीवन है। सम्पूर्ण सृष्टि में से एक उठी हुयी लहर जैसा। जो प्रलय के आते ही पुनः उस पञ्चमहाभूत प्रकृति में लीन हो जायेगी। इसके पश्चात अपने अगले प्रवास के लिये निकल पड़ेगी।

श्रीभगवान् कहते हैं पानी से बुलबुले बनते हैं किन्तु बुलबुले में पानी नहीं होता है। मेरे सङ्कल्प से सारी सृष्टि बनती है किन्तु मैं उसमें लिप्त नहीं हूँ।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि सारे प्राणीमात्र मुझसे पृथक हो गये हैं किन्तु यह मेरी योग शक्ति है कि जिन भूतों को मैंने उत्पन्न किया, धारण किया, उनका भरण-पोषण किया परन्तु वास्तविक रूप से उन भूतों में मैं स्थित नहीं हूँ।

प्रतिध्वनि का कारण शब्द है।
यदि हम पर्वत पर खड़े होकर '**हे राम**' का उच्चारण करेंगे तो उसकी प्रतिध्वनि हमें पुनः-पुनः सुनायी देगी। यही सुनायी देने वाली ध्वनि हमारी नहीं है। उसे हम अपना स्वर समझने की त्रुटि न करें, वह हमारी प्रतिध्वनि है।

इसी प्रकार प्रतिबिम्ब होता है। दर्पण के समक्ष खड़े होकर हमें हमारा प्रतिबिम्ब दिखता है किन्तु वास्तविकता में उस ओर हम नहीं हैं। हम जैसे ही वहाँ से हटेंगे, वह छाया भी वहाँ से हट जायेगी। ऐसा नहीं होता कि हमारे खड़े रहने से एक प्रतिकृति तैयार होकर बाहर आकर खड़ी हो जाये। हमारे हटते ही प्रतिबिम्ब भी लुप्त हो जाता है।

इसी प्रकार श्रीभगवान् का यह अस्तित्व है। श्रीभगवान् सूर्य हैं तथा हम उनकी किरणें हैं। किरणें सूरज नहीं होती हैं, वे बन जाती हैं और फिर लुप्त भी हो जाती हैं। वैसा ही हमारा जीवन है। हम श्रीभगवान् की किरण बनकर आये हैं तथा फिर उसी में लुप्त हो जायेंगे, उसी प्रकृति में सभी मिल जायेंगे।

मिट्टी का मटका, मिट्टी से ही बनता है किन्तु अपने-आप नहीं। कुम्हार के गढ़ने पर वह बनता है। श्रीभगवान् अपने सङ्कल्प से हमें बनाते हैं और फिर जैसे मटके के फूटते ही वह मिट्टी पुनः मिट्टी में मिल जाती है, उसी प्रकार यह सारी सृष्टि जिसका सृजन श्रीभगवान् कुम्हार की भाँति कर रहे हैं, वह श्रीभगवान् में ही विलीन हो जाती है।

ध्यान से देखने पर बड़े प्यारे-प्यारे विचार मन में आते हैं। जब वो कुम्हार अपना चक्का घुमाता है और मिट्टी को आकार देना आरम्भ करता है तब उसका एक हाथ बाहर से आधार देता है और एक अन्दर से आकार देता है। इस प्रक्रिया के बाद ही एक पात्र तैयार होता है। मात्र आकार देने से पात्र नहीं बनेगा या मात्र आधार देने से भी पात्र नहीं बनेगा। आकार तथा आधार की प्रक्रिया साथ-साथ चले तभी पात्र बनेगा।

ईश्वर भी हमारे साथ ऐसा ही करते हैं। आकार भी उन्होंने ही दिया है और आधार भी वही दे रहे हैं। आधार देते हुये कभी थपेड़े भी देने पड़ते हैं, किन्तु थपेड़े भी हमारे जीवन को आकार ही देंगे। यह दृढ़ विश्वास हमें अपने हृदय में रखना चाहिये। आपका ही आधार है इसीलिये मैं टूटूँगा नहीं।

उन्हीं का आधार है व वही आकार दे रहे हैं, तभी मेरा पात्र बनेगा। मैं सुपात्र बनूँगा। यह भाव मन में निरन्तर बना रहेगा तभी यह

राजविद्या हमारी समझ में आयेगी। जब तक अहङ्कार का पूर्णरूप से मर्दन नहीं होगा तब तक इस राजविद्या को समझना कठिन है। श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं तो सर्वत्र स्थित हूँ।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन- जिस प्रकार आकाश में वायु स्थित है किन्तु वायु आकाश से सर्वथा भिन्न है। वायु आकाश में ही विचरण करती रहती है किन्तु आकाश स्थिर है। उसी प्रकार मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न सारे भूत मुझमें ही स्थित हैं किन्तु मैं उनमें लिप्त नहीं हूँ।

आकाश वायु के साथ मिलता नहीं है। वायु की गति कितनी भी तीव्र क्यों न हो, आकाश सर्वथा स्थिर रहता है। इसी प्रकार से श्रीभगवान् किसी में लिप्त नहीं होते, परन्तु बिना आकाश के वायु का विचरण भी असम्भव है। ऐसे ही भगवद् तत्व के बिना हमारा आना-जाना भी असम्भव है। हमारा आना-जाना चल रहा है क्योंकि हम सब उस भगवद् तत्त्व में स्थित हैं। भगवत् सङ्कल्प के कारण ही हम सब बने हुये हैं।

श्रीभगवान् यहाँ बड़ी प्यारी-प्यारी बातें करते हैं। यह बातें थोड़ी कठिन अवश्य हैं। ज्ञानेश्वर माउली जिनकी वारी (यात्रा) आळन्दी से निकलती है। ज्ञानेश्वर माउली जो साढ़े सात सौ वर्षों के पश्चात् भी सञ्जीवन समाधि में वहीं स्थित हैं। परमपूज्य स्वामी जी का वेदश्री तपोवन आश्रम आळन्दी में ही स्थित है। विगत वर्ष स्वामी जी के हीरक जन्मदिवस के शुभ अवसर पर गीता भक्ति महोत्सव मनाया गया तथा सन्त ज्ञानेश्वरजी द्वारा रचित ज्ञानेश्वरी, जो कि उन्होंने अपनी आयु के चौदहवें वर्ष में लिखी थी, भगवद्गीता की टीका है, प्राकृति मराठी में ओवी के रूप में लिखी गयी है, इसका हिन्दी संस्करण गीता प्रेस द्वारा पद्य के रूप में निकाला गया है। प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में ज्ञानेश्वरी एक बार अवश्य पढ़नी चाहिये। यह अद्भुत ग्रन्थ है।

सन्त ज्ञानेश्वर को हम 'माऊली' सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है माँ तथा वह स्वयं को श्री कृष्ण की गोपी व पुत्री मानते हैं। उन्होंने आयु के इक्कीसवें वर्ष में सञ्जीवन समाधि ले ली थी।

उनके बड़े भ्राता का नाम निवृत्तिनाथ था जिन्होंने नाथ सम्प्रदाय की दीक्षा ली थी। सन्त ज्ञानेश्वर को भी उन्होंने यह दीक्षा दी।

वारकरी सम्प्रदाय मूल रूप से नाथ सम्प्रदाय से निकला हुआ है किन्तु ये सारे सम्प्रदाय जाकर राजविद्या राजगुह्य योग तक ही पहुँचते हैं।

हमें लगता है कि रामानुज तथा शङ्कराचार्य भिन्न-भिन्न हैं। शैव भिन्न हैं, वैष्णव भिन्न हैं किन्तु सारे मार्ग एक ही स्थान पर जाकर रुकते हैं। आकाश से वर्षित होने वाला जल नदियों के द्वारा सागर से जाकर मिल जाता है उसी प्रकार से इन सारे सम्प्रदायों का अन्तिम लक्ष्य पराङ्गति तथा मोक्ष का मार्ग है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं- हे अर्जुन! कल्प के अन्त में सारे भूत मुझमें लीन हो जाते हैं और आदि में मैं पुनः उन्हें रचता हूँ। जैसे ग्रीष्म ऋतु में सारे पौधे, तृण भूमि में धँस जाते हैं, मिट्टी में एक रूप हो जाते हैं तथा वर्षा के पश्चात् फिर से उठ खड़े होते हैं बिल्कुल वैसे ही।

सुनार सोने के अलङ्कार को पिघलाकर पुनः आभूषण बना लेता है।
लहरें जल से उठती हैं तथा पुनः जल में विलीन हो जाती हैं तथा पुनः उसी जल में उठती हैं।

जिस प्रकार नींद से जागते ही मन का स्वप्न मन में ही लुप्त हो जाता है। ऐसे ही सृष्टि की रचना मैं करता हूँ। अन्त में कल्प के सम्पूर्ण भूत मात्र का भी मुझमें ही विलय हो जाता है। प्रलय में विलय होना अत्यन्त साधारण है किन्तु प्रलय के समाप्त होते ही फिर कल्प का आरम्भ करता हूँ। नयी सृष्टि की रचना करता हूँ तथा पुनः एक बार सारी जीव सृष्टि का निर्माण करता हूँ।

हम घड़ी पहनते हैं या हम नमक लाते हैं। यह घड़ी कम्पनी के चेयरमैन नहीं बनाते हैं। स्वयं कम्पनी के मालिक नमक बनाने समुद्र के किनारे पर नहीं जाते हैं।
ये लोग मात्र योजना बनाते हैं, कुछ लोगों को इस कार्य के लिये नियुक्त करते हैं। कारखाना बनता है। नमक सुखाया गया, छाना गया तथा पैकेट में भरा गया, फिर बोरी में भरकर बाज़ार में भेजा जाता है। बाजार में दुकानदार के द्वारा वह हमारे पास आता है। यह एक श्रृङ्खला होती है। यहाँ स्वामी तो कहीं आया ही नहीं, उन्होंने योजना की थी।

नमक **टाटा** के नाम से जाना जाता है।
घड़ी **राडो** के नाम से जानी जाती है
मोबाइल **एप्पल** के नाम से जाना जाता है।

इसमें इन कम्पनियों के स्वामी स्वयं कहीं कार्य नहीं करते हैं फिर भी उनका कार्य उनकी योजनानुसार चलता है। उनके बिना इन कार्यों की हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं।

ऐसे ही ईश्वर के आदेश से सारे देवता कार्य करते हैं तथा इस सृष्टि की रचना होती है।

इसके निर्माण तथा विलय का सही अर्थ समझ में आ जाये तथा हमारे मन में श्रद्धा जाग जाये तो अहम् का विसर्जन हो जायेगा। इसके बाद ही जीवन का अलङ्कार बन सकता है तथा हम भगवत् चरणों में पहुँच सकते हैं।

इसके साथ ही आज के सत्र का विराम हुआ तथा प्रश्नोतर सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तरी सत्र

प्रश्नकर्ता- विद्यासागर भैया
प्रश्न- भगवान् राम और कृष्णजी दोनों एक हैं और विष्णुजी भी यही हैं परन्तु रामजी साकेत लोक में रहते हैं, कृष्णजी गौलोक में रहते हैं, विष्णुजी बैकुण्ठ लोक में रहते हैं। ऐसा क्यों हैं?
उत्तर- श्रीभगवान् के अनेक अवतार हैं। यह श्रीभगवान् की अपनी शक्ति है और हम उनको मानव जैसा समझते हैं। यह बहुत गलत करते हैं। श्रीभगवान् ने पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट रूप से कहा था कि उनका स्वरूप क्या है? वह उस प्रकाश पुञ्ज के निर्माता हैं, वही उनका मूल स्थान है। प्रकाश के भी अलग-अलग रूप होते हैं-

प्रकाश कभी मोमबत्ती, बल्ब या ट्यूब से भी निकलता है और एक्स-रे में भी वही प्रकाश होता है परन्तु हर प्रकाश का स्वरूप अलग होता है। उनका काम भी अलग होता है। इसी प्रकार से श्रीभगवान् के अलग-अलग अवतार अलग-अलग स्वरूप में हमें दिखते हैं और उनका काम भी अलग-अलग होता है। जैसे श्रीराम के अवतार में श्रीभगवान् ने मानव लीला की है, कोई चमत्कार नहीं किया। कृष्ण लीला में चमत्कार ही चमत्कार भरे पड़े हैं। कालिया का मर्दन किया, पूतना का वध किया।

कृष्ण लीला सारी की सारी चमत्कारों से भरी हुई है। श्रीभगवान् अपनी लीला रचते हैं और वह उस प्रकाश पुञ्ज की भाँति है जिसकी कई किरणें हैं। सूरज की किरणें सब जगह पहुँचती हैं लेकिन वे अलग नहीं है। उनका उद्घाटन एक ही है। इसी प्रकार से भगवत् तत्त्व भी है, उन्होंने अलग-अलग अवतार धारण किए हैं।

श्रीभगवान् का जो अनन्त रूप है उसी में से छोटी-छोटी किरणें अलग-अलग अवतारों में आती हैं। यह सारे रूप इस भगवत् तत्त्व से आने वाले हैं और उनके ही अवतार हैं।

प्रश्नकर्ता- विद्या सागर भैया
प्रश्न- श्रीभगवान् ने पन्द्रहवें अध्याय में कहा है-
न तद्भासते सूर्यो न शशांको न पावक:
कि मेरे धाम में आने के बाद कोई वापस नहीं जाता है तो यदि हम उस धाम में चले गए तो हम क्या समझें कि हम गौलोक में या बैकुण्ठ लोक में या किसी और लोक में हैं?
उत्तर- उनको नियन्त्रित करने वाला एक और लोक है। जहाँ से सारे लोक नियन्त्रित होते हैं। वहाँ पहुँचना, इसका अर्थ है मोक्ष प्राप्त करना होगा। प्रकृति के विषय में जानना होता है। त्रिगुण के विषय में जानना होगा। श्रीभगवान् के उस स्वरूप को भी प्रकृति के अधीन होना पड़ता है। प्रकृति स्वयं श्रीभगवान् ने रची है तो भी उन्हें उसी के अधीन होना पड़ता है।

यदि संसदीय कहते कि मैं तो नियम बनाने वाला हूँ तो यह नियम मेरे पर लागू नहीं होगा या कोई न्यायाधीश कह दे कि मैं तो न्याय दान करने वाला हूँ तो मैं अन्याय भी करूँगा तो चल जाएगा, परन्तु यह नहीं हो सकता। जो व्यवस्था बनी है उसके अन्तर्गत हमें यह समझना पड़ेगा।

श्रीभगवान् ने प्रकृति का आश्रय लिया है और फिर सारे भूत मात्राओं की उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार से प्रकृति और पुरुष दोनों मिलकर बने हैं। उनके अधीन होकर ही रहते हैं। जो हमारा शरीर करेगा, वह हमारे अन्दर बैठी आत्मा को भुगतना पड़ेगा। आत्मा कुछ नहीं कर सकता, खाली हमारे शरीर द्वारा किए हुए कर्मों को भुगतता है। जो हमारे मन और बुद्धि करेंगे और जो हमारा शरीर कार्य करेगा, हमारी आत्मा भी उसी के अनुसार पाप और पुण्य में जाती है और इसीलिए हमारा जन्म-मरण का चक्कर चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता- विद्या सागर भैया
प्रश्न- गीताजी में एक जैसे ही दो श्लोक हैं। श्रीभगवान् ने अर्जुन को यदि एक बार बता दिया था तो वापस नवम् अध्याय में दोबारा से क्यों बताना पड़ा?
उत्तर- कुछ बातों को हमें जोर देकर समझाना पड़ता है, जो बातें ठीक से समझ नहीं आती हैं। जिस प्रकार हम अपने बच्चों को कोई काम बताते हैं और जाते-जाते फिर से उन्हें स्मरण कराते हैं। यह हम इसलिए करते हैं क्योंकि वह काम महत्वपूर्ण है, इसलिए हमें वह बार-बार स्मरण कराना पड़ता है ताकि वह बात ध्यान में रहे और काम हो जाए। इसलिए श्रीभगवान् भी अपने सखा अर्जुन को रहस्यमयी गुह्यत्तम ज्ञान दे रहे हैं और स्वाभाविक रूप से जिन बातों का बहुत महत्त्व है उन बातों को वह दो बार कह रहे हैं।

प्रश्नकर्ता- सुहास भैया
प्रश्न- जब हमारी जन्म के बाद मृत्यु आती है तो क्या मृत्यु होने के बाद हमें मनुष्य जन्म वापस मिलेगा या कीड़े मकोड़े या पशु पक्षी के रूप में हम जन्म लेंगे? क्योंकि विश्व रूप दर्शन में यह दिखाया गया है कि मनुष्य मरने के बाद भी मनुष्य के रूप में ही जन्म ले सकता है?
उत्तर- यह आपके कर्मों पर निर्भर करता है। मानव जीवन में आने के पश्चात आपके कर्म कैसे रहें। यदि आपके कर्म अच्छे होंगे तो इससे भी उन्नत जीवन मिलता है और यदि आप पाप कर्म में रहे तो इससे नीचे का जीवन मिलता है। अब यह मानव का मिलेगा या कीड़े-मकोड़े या पक्षियों की योनियों में हम जाएँगे, यह नहीं कह सकते। मानव जन्म भी नौ महीने तक अपने पीड़ा प्रद तरीके से गुजरता है, इसलिए
"**पुनरपी जननी जठरे शयनम**"।
यदि हमें इसे नहीं भुगतना है तो हमें गीता के मार्ग पर चलना पड़ेगा परन्तु कई बार तो हमसे अनजाने में भी गलती हो जाती है

और पाप हो जाते हैं तो उसका भी आपको कुछ न कुछ दोष लगेगा ही।

आपने कुछ भी अच्छा किया है तो मानव जन्म फिर से मिलेगा और बहुत ही अच्छा किया तो उससे मोक्ष मिलेगा और यदि गलत काम किया है तो कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी बन सकते हैं। जन्म और मृत्यु हमारे हाथ में नहीं है। हमें इसका शोक नहीं करना चाहिए।

ए बी सी डी में बी (B) का अर्थ जन्म (birth) और डी (D) का अर्थ डेथ (death) है तो इसके बीच में जो सी (C) है वह हमारी चॉइस (Choice) है जो कर्म हम करते हैं। जैसे हम कर्म करेंगे वैसी ही योनि में जाएँगे।

प्रश्नकर्ता- सुहास भैया
प्रश्न- ऐसा कहते हैं कि जो हमारे अन्दर आत्मा है वही ईश्वर है परन्तु इस अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं इससे अलग हूँ। जो हमारी आत्मा है वह परमात्मा का अंश है फिर यह अलग कैसे हो सकता है?
उत्तर- जिस प्रकार से एक शक्कर का डिब्बा होता है उसमें से थोड़ी शक्कर निकालकर कुछ बना लिया तो वो शक्कर का डिब्बा ही रहेगा, क्योंकि उसमें से शक्कर का छोटा सा अंश निकाला है। वैसे ही उस परमात्मा का छोटा सा अंश हमारी आत्मा के रूप में आता है। हमारे अन्दर पूरे परमात्मा नहीं बैठे हैं केवल परमात्मा का एक अंश है जिसे हम परम् आत्मा कहते हैं। जो परमात्मा का अंश है वही हमारी आत्मा है।

"ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु"

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||